Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 3, Issue 1 - 2018

जनतंत्र, संस्कृति और शिक्षा

डॉ. अनुराधा पालीवाल*

संसार के समस्त प्राचीन समाज के बारे में आप जान सकते है कि धर्म का सक्रिय प्रभाव मनुष्य के प्रत्येक गतिविधि पर रहता था। इसलिए शिक्षा का आधार धार्मिक शिक्षा थी। भारत विश्व गुरू रहा है। गुरू का अर्थ श्रेष्ठ या उच्च से है। भारत की श्रेष्ठता या उच्चता का कारण इसकी धन सम्पत्ति या वृहत्त उद्योग नहीं है। भारत की उच्चता इसकी शिक्षा एवं संस्कृति के कारण है। उच्च शिक्षा से मेरा तात्पर्य स्नातक या स्नातकोत्तर शिक्षा तक नहीं है, बल्कि वह शिक्षा उच्च है, जो एक श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण करें।

भारत की शिक्षा एवं संस्कृति उसी भांति उच्च है जिसमें मनुष्यत्व से देवत्व तक पहुंचाने की सामर्थ्य है। भारत में बौद्धकाल से ही धार्मिक शिक्षा पूर्णतया उपयुक्त तथा सख्त चरित्र प्रशिक्षण एवं मूल्य शिक्षा के लिए दी जाती थी।

शिक्षार्थी गुरूकुल, आश्रम एवं विहार में ठहरते थे, उन्हें एक सख्त अनुशासन वाली जिन्दगी जीने की आवश्यकता थी, सादगी तथा नैतिक आचरण की सख्त संहिता को अवलोकन करना एवं जीवन में उतारना था। शिक्षा प्राथमिक रूप से मूल्योन्मुखी थी। लेकिन वैज्ञानिक विकास के साधनों ने, ज्ञान के विस्तार ने तथा परिवर्तित सामाजिक एवं राज्य प्रशासन की प्रणालियों ने अब सभी कुछ नये संदर्भ में सोचने–विचारने के लिए प्रत्येक देश को बाध्य कर दिया है।

यह भी सत्य है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। वैज्ञानिक साधनों ने देशों की दूरियाँ परस्पर नगण्य कर दी है। समय का अर्थ भी बदल दिया है। आज कोई भी देश अपने आप में अलग–अलग रूप से नहीं रह सकता है। सभी किसी न किसी रूप में एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं या परस्पर जुड़े हुए हैं। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, संचार माध्यमों, शिक्षा, सुरक्षा आदि सभी स्वरूपों में सभी देशों की परस्पर सहभागिता है।

विश्व के सभी देशों में विकास के साथ–साथ सबसे बड़ा संकट जो मानव अस्तित्व के लिए उत्पन्न हो रहा है वह मूल्यों का संकट है। इस संकट पर समय रहते काबू नहीं पाया गया तो सारा विकास, विनाश में परिवर्तित होने की स्थिति भी बन सकती है। अतः इसका समाधान समय रहते करना, हम सबका नैतिक कर्तव्य है।

विश्व के अधिकतर देशों मे तथा विशेष रूप से भारत में शासन की पद्धति जनतांत्रिक है। हालांकि भारत के लिए यह पद्धति नई नहीं है। प्राचीन भारत में भी जनतन्त्रीय आदर्श पलते रहे हैं। आचार्य कुलों, गुरूकुलों और आश्रमों में व्यक्ति को सर्वांगीण शिक्षा देकर समाज का श्रेष्ठ सदस्य एवं देश का श्रेष्ठ नागरिक बनाने का प्रयास किया जाता था।

प्लेटो और अरस्तु दोनों ने ही जनतन्त्र की सफलता के लिए शिक्षा के महत्व पर ध्यान दिया है।

*प्रवक्ता, आर्य महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, मालवीय नगर, अलवर।
Correspondence E-mail Id: editor@eurekajournals.com

© Eureka Journals 2018. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-3501**

आल्डस–हक्सले ने लिखा है– "यदि तुम्हारा उद्देश्य स्वतंत्रता और जनतंत्र है, तब तुम्हें जनता को स्वतंत्र होने और स्वयं अपना शासन करने की शिक्षा देनी पड़ेगी।" शिक्षा के बिना जनतन्त्र में सफलता नहीं मिल सकती। जहाँ कहीं भी जनतन्त्रीय सरकार असफल हुई है, वहाँ उसका कारण अशिक्षा ही रही है। चूंकि जनतन्त्र में सरकार के सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं, इसलिए जब तक जनता, शिक्षित नहीं होगी, तब तक उपयुक्त नेताओं के चुनाव की आशा नहीं की जा सकती। जब तक किसी जनतन्त्र के नागरिक को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का भलीभांति ज्ञान ही नहीं होगा तो वह उसके अनुसार व्यवहार ही कैसे कर सकता है?

बर्टेण्ड–रसल ने लिखा है– "अपने वर्तमान रूप में जनतन्त्र किसी भी राष्ट्र में बिल्कुल असंभव है, जहाँ पर बहुत से लोग पढ़ नहीं सकते।"

जर्मन दार्शनिक फिख्टे ने लिखा है– "जिस राष्ट्र ने यथार्थ व्यवहार में पूर्ण व्यक्तियों को शिक्षा देने की समस्या पहले सुलझा ली है, वही पूर्ण राज्य की समस्या को सुलझा सकेगा।"

सन् 1949 के भारतीय विश्वविद्यालय आयोग में विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए डा0 राधाकृष्णनन् ने इस बात पर जोर दिया था कि जनतंत्रात्मक राज्य में व्यक्ति के महत्व को स्वीकार किया जाता है और व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया शिक्षा है। अस्तु जनतन्त्रीय समाज की स्थापना के लिए शिक्षा आवश्यक है।

अमेरिकन शिक्षा शास्त्री जौन डिवी के अनुसार बिना शिक्षा के लोकतन्त्र की कल्पना नहीं की जा सकती। शिक्षा ही व्यक्तियों में उन गुणों का निर्माण करती है, जो लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है।

विचारणीय प्रश्न?

जनतन्त्र का आधार उदारवादी सिद्धान्त है। जाति, धर्म, वर्ण तथा आर्थिक स्थिति उसकी स्वतंत्रता में बाधक न हो, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी राय अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता हो, दूसरों के प्रति सहिष्णु हो, ऐसी विचारधारा से जनतन्त्र सफल व सकारात्मक हो सकता है अन्यथा नहीं। शिक्षा में अध्यापक, विद्यार्थी की अपनी–अपनी शैक्षिक स्वतंत्रता है।

अकादमिक स्वतन्त्रता का दुरूपयोग होने का डर जनतंत्र में बना रहता है जिसमें धार्मिक, राजनैतिक विचारधाराओं को थोपा जाता है, पार्टियों के बदलते ही पाठ्यक्रम भी बदलता है। शिक्षा तंत्र पर राजनीति हावी हो जाती है। चुने हुए प्रतिनिधि निहित स्वार्थों के चलते शिक्षा के उद्देश्यों को भूलकर मनमानी असामान्य गतिविधियों को जन्म दे रहे हैं। ऐसे में तकनीक माध्यम के उपकरणों ने आग में घी का काम किया है, शिक्षा का स्तर गुणवत्ता से हटकर निम्न स्तर पर पहुंच गया जिसे हम जनतन्त्र में एक नकारात्मक रूप में देख रहे हैं। यह दृश्य हमारे सामने नित नई घटनाओं के रूप में आ रहे हैं और हम सिवाय सुनने, देखने और उसे झेलने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पा रहे। एक रिसाव को रोक नहीं पाते कि दूसरी समस्या सुरसा की तरह मुंह खोले सामने खड़ी पाते हैं ? इन समस्याओं को सुलझाने में जनतंत्र को अनुशासन व्यवस्था भी असफल हो रही है और समस्या रूपी सुरसा राक्षसी के सामने अपने घुटने टेक रही है। यह विचारणीय प्रश्न है।

जनतन्त्र का अर्थ है, जनता के हाथ में शक्ति देना। बिना विवेक के देना उचित नहीं होता, क्योंकि उस शक्ति के दुरूपयोग का खतरा बना रहता है। विवेक, शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति में उत्पन्न किया जा सकता है।

© Eureka Journals 2018. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

जनतन्त्र के मूल सिद्धान्त है–स्वतंत्रता, समानता, बन्धुता एवं न्याय।

इसी प्रकार जनतन्त्र में विश्वास रखने वाले व्यक्ति के जीवन–दर्शन में निम्नलिखित गुणों का समावेश होना चाहिए–(जनतन्त्र के मूल्य)

1. व्यक्ति का आदर करना।
2. सहनशीलता
3. परिवर्तन में विश्वास
4. समझाने बुझाने के द्वारा परिवर्तन
5. सेवा भावना
6. व्यक्तिगत तथा सामाजिक उन्नति में विश्वास।

इसी प्रकार सांस्कृतिक मानकों के लिए भी शिक्षा ही प्रमुख आधार है। भारतीय संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति कहा जा सकता है। विश्व की अन्य संस्कृतिया जैसे मैसोपोटामिया की सुमेरियन, बेबीलोनियन, मिस्त्र, ईरान, यूनान व रोम की संस्कृतियाँ कभी की लगभग समाप्त हो चुकी है, केवल कुछ अवशेष में ही उनकी गौरव गाथा गाई जा सकती है, जबकि भारतीय संस्कृति अनेक वर्षों तक कई प्रकार की बाधाओं, विरोधों, दबाव आदि को सहन करते हुए भी आज जीवित है। इसका प्रभाव एवं इसकी छाप कई द्विपों तक फैली हुई है। सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की विशेषताओं के कारण अपनी दिव्य आभा से यह समस्त राष्ट्रीयता को उदभासित कर रही है। इस संस्कृति में सांसारिकता और आध्यात्मिकता का अद्वितीय तालमेल है। इसमें जीवन का उद्देश्य पारमार्थिक सुख माना गया है। इस संस्कृति में प्रत्येक क्षेत्र का धर्म से जोड़ा गया है। अपने तथा समाज के जीवन की उन्नति के लिए भारतीय संस्कृति इस बात पर बल देती है कि व्यक्ति संसार में रहता हुआ ही त्याग मय भोग की ओर प्रेरित हो, धर्म के अनुसार आचरण करे और जीवन के अंतिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करें।

इस संस्कृति की अनेक विशेषताएँ है जो आज भी जीवन्त बनाए हुए हैं जैसेः– वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पुरूषार्थ, ऋण, महायज्ञ और संस्कार। ये विशेषताएँ हमारी धरोहर है जो परम्परागत रूप से आगे हस्तान्तरित होती रहती है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ, मानव को एक सभ्य व सम्पूर्ण स्वस्थ जीवन जीने की कला की एक पद्धति है।

अब प्रश्न यह है कि शिक्षा के माध्यम से शिक्षक क्या–क्या कार्य करें? कैसे करें? कब करें? कौन सी विधि से करें? किसकी सहायता से करें ताकि विद्यालयों में शिक्षण कार्यों के साथ–साथ छात्रों में जनतान्त्रिक मूल्यों और सांस्कृतिक–मानकों की शिक्षा भी दे सकें। इसके लिए शिक्षा के सभी क्षेत्रों में यथा, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधियाँ, शिक्षक–व्यवहार, पाठ्य सहगामी क्रिया–कलापों, शिक्षा प्रबन्ध, परीक्षाएँ, प्रशासन आदि में शिक्षा से संबंधित सभी लोग जैसे संस्था प्रधान, अध्यापक, कर्मचारी, प्रशासक, प्रबन्धक एवं छात्रों तथा अभिभावकों का परस्पर सहयोग वांछनीय है।

यह सत्य है कि इन सभी कार्यों की मुख्य धुरी तो शिक्षक ही रहेगा। शिक्षक को इसमें नेतृत्व प्रदान करते हुए सभी का सहयोग प्राप्त कर उद्देश्यों की प्राप्ति करनी होगी।

© Eureka Journals 2018. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501